भारतीय अध्यात्म साधना एवं भक्तिमार्ग

*सीमा चौधरी

शोधपत्र–संस्कृत

भक्तिमार्ग भारतीय अध्यात्म साधना का उत्कृष्ट साधन है। इसकी नींव इतनी सुदृढ़ है कि साधक इस मार्ग का अवलम्बन लेने के पश्चात् सम्भवतः अन्य मार्गों को भूल जाता है। भक्ति भी योग है तथा इसके लिए भी यम–नियमादि आठ अंगों का अभ्यास अपरिहार्य है। इस विषय में श्रीमद्भागवत में लिखा गया है–

''यमादिभिर्योगपथैरभ्यसन् श्रद्धयान्वितः।
मयि भावेन सत्येन मत्कथाश्रवणेन च।।''[1]

तथा–

''जितासनो जितश्वासो जितसंगो जितेन्द्रियः।
स्थूलो भगवतोरूपे मनः संधारयेद् धिया।।''[2]

यहाँ जितासन से आसन, जितश्वास से प्राणायाम, जितसंग एवं जितेन्द्रिय से प्रत्याहार, संधारयेद् से धारणा का ही संकेत किया है जो वस्तुतः योगांग हैं।

धारणा के अचल होने पर ही मानव हृदय में भगवद्भाव की प्रतिष्ठा होती है तथा जब स्थिरतापूर्वक भगवद्रूप का दर्शन होने लगता है तो भक्तियोग का उदय होता है। उक्त स्थिति में पुलकप्रमोदादि स्वानुभव होने लगते हैं।

''एवं हरौ भगवति प्रतिलब्धभावो
भक्त्या द्रवद् हृदय उत्पुलकः प्रमोदात्।।''[3]

भक्तियोग जन्य उपर्युक्तानुभव के परिणामस्वरूप आत्मा में अनात्मा के धर्मों का आभास सदा के लिए समाप्त हो जाता है। इसके साथ ही अविद्यादि क्लेशों से निवृत्ति भी प्राप्त होती है।[4] योगदर्शन के आचार्यों की सम्मति में योगमार्ग का सहायक मार्ग भक्तिमार्ग है। भक्तिमार्ग के सहारे योगमार्ग का अनुयायी तत्त्वसाक्षात्कार में सफलता प्राप्त करता है–

''न युज्यमानया भक्त्या भगवत्या खिलात्मनि।
सद शोऽस्ति शिवः पन्था योगिनां ब्रह्मसिद्धये।।''[5]

श्रीमद्भगवद्गीता में भी भगवान श्रीकृष्ण ने भक्तिमार्गानुयायी योगी की श्रेष्ठता का उल्लेख किया है–

''योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः।।''[6]

''मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः।।''[7]

उक्त उल्लेखों से यह स्पष्ट है कि योग और भक्ति में मूलतः कोई अन्तर नहीं है। अन्तर केवल साधना की प्रक्रिया का है। दोनों के लक्ष्य भी पृथक् नहीं है किन्तु दृष्टिकोण के भेद से समानान्तर कहे जा सकते हैं। एक ओर जहाँ योग का लक्ष्य चित्तवृत्ति–निरोध एवं भगवत्प्राप्ति है, वहाँ भक्ति का लक्ष्य है उपास्य के प्रति अनन्य प्रेम एवं शरणागति तथा उपास्य के प्रति आत्मसमर्पण। दोनों में निम्न तत्त्वों को समान रूप से महत्त्व दिया गया है–

(i) संयम अर्थात् इन्द्रियनिग्रह (ii) चित्तशुद्धि अर्थात् मन की निर्मलता। (iii) वैराग्य अर्थात् संसार एवं सांसारिक पदार्थों के प्रति अनासक्ति। (iv) चित्त की एकाग्रता अर्थात् मनोनिग्रह (v) समदृष्टि अर्थात् सब प्राणियों के प्रति समत्व भाव। (vi) निर्वैरता अर्थात् सब के प्रति प्रेमपूर्ण व्यवहार। (vii) अहंकार का परित्याग। (viii) एकत्व ज्ञान अर्थात् सब प्राणियों को एक ही ईश्वर का स्वरूप समझना। (xi) सर्वत्र आत्मदर्शन अर्थात् प्रत्येक पदार्थ में ईश्वरत्व का अनुभव।

भगवत्प्राप्ति से पूर्व योगी एवं भक्त दोनों को स्वहृदयस्थ आत्मा का साक्षात्कार करना अत्यन्त आवश्यक बतलाया गया है। उपासना भक्ति का स्थूल रूप है तथा आत्मा से एकाकारता का अनुभव उसका सूक्ष्म रूप है। उपासना भक्ति की प्रक्रिया है जिसे पारिभाषित करते हुए डॉ इन्द्रमोहन प्रसाद ने लिखा है– ''आत्मानुसन्धानपूर्वक चित्त की भगवद्रागात्मिका वृत्ति को अखण्ड तैलधारवत् प्रवाहमय बनाते हुए हृदयस्थ आत्मा से जोड़े रखना ही भक्ति अथवा उपासना है।''[8] डॉ0 प्रसाद का उक्त मन्तव्य जगद्गुरू शंकराचार्य के गीताभाष्य में प्रतिपादित उपासना के स्वरूप से मेल खाता है। आचार्य शंकर ने लिखा है– ''उपास्य वस्तु को बुद्धि का विषय बनाकर उसके समीप पहुंच कर तैलधारा की भाँति चित्तवृत्तियों के प्रभाव से दीर्घकाल तक

* राजकीय महाविद्यालय चिमनपुरा, शाहपुरा, जयपुर

उपास्य में स्थिरता बनाये रखना ही उपासना है।'[9] भक्तिमार्ग की उपासना में स्थिरता को प्राप्त होने वाली चित्तव त्ति भगवत्प्रेमात्मिका होती है। इस चित्तवृत्ति का अन्तिम अवसान समर्पण में होता है। जैसा कि श्रीमद्भागवत के निम्नांकित पद्य में कहा गया हैः–

''कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा,
बुद्ध्यात्मना वाऽनुस तस्वभावात्।
करोति यद्यत्सकलं परस्मै,
नारायणायेति समर्पयेत् तत्।।''[10]

अर्थात् निरन्तर मन वाणी शरीर बुद्धि एवं हृदय की समस्त स्वाभाविक चेष्टाओं को भगवत्प्रीत्यर्थ भगवान् नारायण को समर्पण करना ही भक्ति का यथार्थ लक्ष्य है। भक्ति का प्रभाव इतना तीव्र है कि स्वयं भगवान उस भक्त पुरुष की भक्ति के वशीभूत होकर उसके जीवन की सम्पूर्ण क्रियाओं के केन्द्र बन जाते हैं। भक्तियोग की साधना भी सहज नहीं है इसके लिए कामना एवं अहंकार का पूर्ण परित्याग आवश्यक है। क्योंकि जब तक साधक में किसी भी प्रकार की कामना या अहंकार शेष रहता है, तब तक क्षुद्र अज्ञान के प्रभावस्वरूप उस साधक में भगवत्प्रेमात्मिका वृत्ति नहीं उत्पन्न हो पाती। वह पूर्ण समर्पण भी नहीं कर पाता। भगवान् को पूर्ण समर्पण करने पर वह साधक अनन्त ब्रह्म की कृपा से अनन्त फलों को प्राप्त करता है–

''यद्यदिष्टतमं लोके यच्चयति प्रियमात्मनः।
तत्तन्निवेदयेन्मह्यं तदानन्त्याय कल्पते।।''[11]

समर्पण भाव का उत्क भट परिणाम यह है कि इससे ही साधक भक्त पुरूष को ब्रह्म ज्ञान की भी प्राप्ति हो जाती है–

''यदत्र क्रियते कर्म भगवत्परितोषणम्।
ज्ञानं यत्तददीनं हि भक्तियोगसमन्वितम्।।''[12]

भक्त पुरुष ब्रह्मज्ञान प्राप्ति के कारण अद्वितीय अलौकिक व्यक्तित्व को प्राप्त कर इस संसार में पूजनीय बनता है। योगीजनों का यह अनुभव है कि ब्रह्म में लीन चित्त वाला भक्त स्वयं ब्रह्म तुल्य हो जाता है– ब्रह्माविद् ब्रह्मैव भवति।[13] गीता में भी भगवान् श्रीकृष्ण ने इस रहस्य को निम्नांकित शब्दों में अभिव्यक्त किया है–

''यो यच्छद्धः स एव सः।''[14]

भक्ति के संदर्भ में भगवान् श्रीकृष्ण की यह भी मान्यता रही है, कि जिस प्रकार विषयों का सतत चिन्तन करने से चित्त उन विषयों में आसक्त होकर पुरुष को विषयी बना देता है, ठीक उसी प्रकार चित्त द्वारा निरन्तर भगवान् का चिन्तन करने से चित्त भगवन्मय हो जाता है और अन्ततः साधक भक्त पुरूष भी भगवद्रूप हो जाता है। अतः उन्होंने लिखा है–

''विषयान् ध्यायतश्चित्तं विषयेषु विषज्जते।
मामनुस्मरतश्चित्तं मत्त्वेन प्रविलोचते।।''[15]

श्रीमद्भगवद्गीता में भी भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को यही रहस्य समझाने की चेष्टा की है। वे कहते हैं कि हे अर्जुन, तुम मन एवं बुद्धि को मुझमें स्थापित करो। मेरा ही स्मरण, मनन एवं चिन्तन करो। इससे तुम मुझ में ही निवास करोगे।[16] मन एवं बुद्धि कैसे ईश्वर में लगे? इस विषय में भी योगिराज श्रीकृष्ण अर्जुन को बताते हैं कि तुम मुझको मन की वृत्तियों का लक्ष्य बनाकर मुझमें ही उन्हें केन्द्रित करने का प्रयास करो। केवल मुझसे ही अनन्य एवं अहैतुकी प्रीति करो।[17] श्रीमद्भगवद्गीता में ब्रह्माप्ति प्रकरण में भी भगवान् ने यही बतलाया है कि चित्त को ब्रह्म में एकाग्र कर सृष्टि के सभी पदार्थों को ब्रह्मरूप समझते हुए सभी कर्मों को ब्रह्म की सन्तुष्टि हेतु सम्पादित करने के भाव के साथ ब्रह्म को समर्पित कर देने से ब्रह्मकर्म समाधि उपपन्न होती है तथा इसी से ब्रह्म की प्राप्ति होती है–

''ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना।।''[18]

यह ब्रह्मकर्मसमाधि सामान्य नहीं है, क्योंकि भक्ति के बिना इसकी प्राप्ति में सफलता संभव नहीं है। भक्ति के लिए भगवान् भक्त को यह कहकर आश्वस्त करते हैं कि मेरे भक्त का कभी नाश नहीं होता।

''न मे भक्तः प्रणश्यति।''[19]

आगे भी वे कहते हैं कि यदि मेरा भक्त सभी लौकिक कर्म को त्यागकर एकमात्र मेरी शरण में आ जाता है तो मैं उसके सभी अशुभों (पापों) का नाश कर उसे मोक्ष प्रदान करता हूं–

''सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरण व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयि यामि मा शुच।।''[20]

भागवत् के मत भक्ति के अवलम्बन से प्रतिक्षण भगवदनुराग वैराग्य एवं शांति का लाभ प्राप्त होता है जो अन्य उपायों से उतना सहज नहीं है।[21] भक्ति के प्रभावस्वरूप कर्मसंस्कारों का कोश लिंगशरीर कर्मसंस्कारों से रहित हो जाता है।[22] अतः भक्तों की सभी प्रकार की भावी विपत्तियाँ जो कर्मफल के रूप में मिलने वाली होती हैं। अनायास ही टल जाती हैं। चित्त के विविध दोषों का उपशमन भी भक्ति से ही होता है तथा निर्मलचित्त वाला भक्तपुरुष भगवदनुरागवश लोकानुरक्ति को सदैव के लिए विस्मृत कर देता है।[23] भक्त के लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं है किन्तु निष्काम भक्त कैवल्य को भी नहीं चाहता।[24] विद्वानों का यह कथन इस संदर्भ में प्रासंगिक जान पड़ता है कि– ''भक्ति साधना शीघ्र ही परवैराग्य को उत्पन्न करके ब्रह्मसाक्षात्कार कराती है अतः मनुष्य को सकाम अथवा निष्काम भाव से मोक्ष प्राप्त्यर्थ भक्तियोग का अवलम्बन लेना श्रेयस्कर है।''[25]

भक्तिमार्ग या भक्तियोग के तत्त्वसाक्षात्कारकर्ता भक्त पुरुषों ने आत्मानुभव से भगवत्स्वरूप का भी निरूपण किया है। उनके

मतानुसार भगवान् रसरूप हैं, परमानन्दस्वरूप हैं तथा वे उसी भक्त पर अपनी अहैतुकी कृपा बनाये रखते हैं जो भक्त उपासक बाहर भीतर से भगवदनुराग से परिपूर्ण हो तथा विशुद्ध रूप से निष्काम हो। भक्तिमार्ग की साधना में प्रकृति का भी सर्वाधिक योगदान है। भक्त पुरुष अपनी अन्तःप्रकृति का बाह्य प्रकृति समन्वय कर मन को भगवान् में स्थिर करने का प्रयत्न करते हैं जिसके परिणामस्वरूप उन्हें बुद्धियोग की प्राप्ति होती है अतः वे स्वतः ज्ञान विज्ञानसम्पन्न होने लगते हैं। उनका अज्ञान समूल नष्ट हो जाता है। इस कारण वे ही भागवत चेतना को प्राप्त कर मुक्त होने में समर्थ होते हैं।[26] श्रीमद्भगवद्गीता का भक्तिमार्ग व्यापक परिवेश में उपस्थापित हुआ है।

''समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वे योऽस्ति न प्रियः
ये भजन्तिृतु मां भक्त्या मयि ते तेशुचा यहम्।।''[28]

अर्थात् हे अर्जुन, जो पुरुष मेरी मेरी भक्ति करते हैं वे मानो मुझमें ही निवास करते हैं तथा मैं भी उनमें निवास करता हूं। भगवान की इस उक्ति से यह स्पष्ट है कि भक्त भगवान से और भगवान भक्त से शीघ्र ही नित्य सम्बन्ध बना लेते हैं। श्रद्धापूर्वक श्रीहरि के समर्पित हुआ भक्त सर्वत्र भगवदुपस्थिति का अनुभव करता हुआ नित्य सतत युक्तता को प्राप्त कर सकता है। श्रीमद्भगवद्गीता के भक्तिमार्ग में उपासना के लिए अनेक अपरिहार्य क्रियायें बतलायी गयी हैं जैसे– भगवत्परायणता, समत्वभाव, वैराग्य, ब्रह्मभाव, निःसंगता, निर्वैरता, आत्मस्थता, अनन्यप्रेम, अनन्यमनस्कता, नित्ययुक्तता, द ढ़ता, निर्द्वन्द्वता इत्यादि।[29] महर्षि शाण्डिल्य ने अपने भक्तिसूत्र में इसी प्रकार की क्रियाओं को भक्ति के अंगरूप में स्वीकार किया है तथा यह भी कहा है कि यदि इनमें से एक का भी पूर्णतया अनुष्ठान कर लिया जाये तो सिद्धि प्राप्त हो सकती है किन्तु भगवत्प्राप्ति हेतु प्रधान रूप से समर्पणअत्यावश्यक है।[30] श्रीमद्भागवत प्रवृत्तिमार्गी भक्त साधकों के लिए इन्द्रियसंयम, रागद्वेशपरित्याग, वर्णधर्मायुग आचारों का परिपालन एवं भगवत्परायणता को आचरणीय प्रतिपादित करता है। वहाँ कहा गया है कि भगवद्भक्तियुक्त साधक द्वारा भगवत्प्रीत्यर्थ वर्णाश्रमों के आचारों का पालन भी निःश्रेयस् का कारक होता है।[31] किन्तु इस आधार पर निःश्रेयस प्राप्ति के इच्छुक भक्त साधक को अपने जीवन में तमोगुणी एवं रजोगुणी प्रवृत्तियों का सर्वथा परिहार करते हुए नित्य सत्त्वगुण की प्रवृत्ति अपनाने का प्रयास करना अपेक्षित है। क्योंकि सदैव सात्विक आचरण, शास्त्रश्रवण, सात्विक अन्न जल ग्रहण, सात्विक मंत्रानु ठान एवं ध्यान इत्यादि से शांत हुए चित्त वाला साधक ही धर्मज्ञान एवं वैराग्य को पाकर भक्ति द्वारा आत्मज्ञान को प्राप्त करने में समर्थ होता है। श्रीमद्भगवदगीता में भगवान् ने भी अव्यभिचारी भक्तियोग के सेवन से ही ब्रह्मलाभ का निर्देश किया है–

''मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते।।''[32]

इस प्रकार भक्तियोग संदर्भित उल्लेखों से यह निष्कर्ष निकलता है कि श्रद्धा वैराग्य निःसंगता एवं योग विधि से समाहित चित्त होकर भक्त पुरुष को भगवदुपासना के निमित्त भगवद्गुणों का आश्रय ग्रहण करते हुए भक्ति मार्ग को अपनाना चाहिए। भक्ति ही एक ऐसा पुरुषार्थ है, जो सहज ही मोक्षरूपी परमपुरुषार्थ की प्राप्ति कराता है। अतः भागवत के कर्त्ता महर्षि वेदव्यास ने भी भक्ति के औचित्य को निम्नांकित शब्दों में व्यक्त किया है–

''एतद्वै श्रद्धया भक्या योगाभ्यासेन नित्यशः।
समाहितात्मा निःसंगो विरक्त्या परिश्यति।।
तस्मात्त्वं सर्वभावेन भजस्व परमेष्ठिनम्।
तद्गुणाश्रयया भक्त्या भजनीयं पदाम्बुजम्।।''[33]

यह भक्तियोग ज्ञान एवं कर्म दोनों मार्गों से श्रेष्ठ भी है। इस विषय में भी भागवतकार ने अपना चिन्तन प्रस्तुत किया है–''निर्मल ज्ञान जो कि मोक्ष की प्राप्ति का साक्षात् साधन है वह भी यदि भक्तिरहित हो तो उस ज्ञान से मोक्ष प्राप्ति नहीं हो सकेगी तथा वह ज्ञान भक्ति के अभाव में साधन एवं सिद्धि दोनों ही अवस्थाओं में कल्याणकारक नहीं हो सकेगा। काम्य कर्म एवं निष्काम कर्म भी भगवदर्पण किये बिना मुक्ति के साधक नहीं हो सकते।''[34] इस प्रकार भक्ति सर्वश्रेष्ठ उपाय है। इसको ज्ञान एवं कर्म की भी अपेक्षा नहीं है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 श्रीमद्भागवत – 3/27/6 2 श्रीमद्भागवत – 2/1/23 3 श्रीमद्भागवत – 3/28/34 4 श्रीमद्भागवत – 3/7/11–13 5 श्रीमद्भागवत – 3/25/19 6 श्रीमद्भागवतगीता – 6/47 7 श्रीमद्भागवतगीता – 12/2 8 श्रीमद्भागवतगीता में भक्तियोग दर्शन, प 0 67 9 श्रीमद्भागवतगीता – शांकरभा य, 12/3 10 श्रीमद्भागवत – 11/2/36 11 श्रीमद्भागवत – 11/11/41 12 श्रीमद्भागवत – 1/5/35 13 वेदान्तरत्नमाला, प 0 56 14 श्रीमद्भागवत – 17/3 15 श्रीमद्भागवत – 11/14/27 16 श्रीमद्भागवत – 12/8 17 श्रीमद्भागवत – 9/34, 11/55 18 श्रीमद्भागवत – 41/24 19 श्रीमद्भागवत – 9/31 20 श्रीमद्भागवतगीता–18/66 21 श्रीमद्भागवत – 11/2/42,43 22 श्रीमद्भागवत – 3/25/33 23 श्रीमद्भागवत – 12/13/16, 10/31/34 24 श्रीमद्भागवत – 11/20/33–34 25 भक्तियोगः पौराणिक संदर्भ प 0 69 26 श्रीमद्भागवतगीता – 10/10–11, 11/54 27 श्रीमद्भागवत – 11/14/16 28 श्रीमद्भागवतगीता – 9/29 29 श्रीमद्भागवतगीता – 6/30/7/19, 18/54 30 ाण्डिल्य भक्तिसूत्र 63, 64 31 श्रीमद्भागवत – 11/13/44–47 32 श्रीमद्भागवत – 14/16 33 श्रीमद्भागवत – 3/32/30,22 34 योगद र्शन की व्यावहारिक विवेचना, प 0 23